लाखों में एक

दिल्ली राज्य, शिक्षा विभाग द्वारा सर्कुलर
टी० बी० सी०/८०० दिनांक १३-६-५५ द्वारा
तीसरी कक्षा के लिए स्वीकृत

लाखों में एक

[बालोपयोगी शिक्षाप्रद कहानियाँ]

●

सन्तराम वत्स्य

●

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
९६ दरियागंज, दिल्ली

प्रथम संस्करण : १९५५
द्वितीय संस्करण : १९५६
तृतीय संस्करण : १९५९

मूल्य साठ नये पैसे

मुद्रक
इण्डिया प्रिंटर्स, दिल्ली—६

दो शब्द

हमारे बच्चे वीर बनें, हमारे बच्चे ईमानदार हों, सत्यवादी हों और साथ ही संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए उनमें व्यावहारिक बुद्धि एवं ज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में हो--ऐसा हम सब चाहते हैं। बच्चों में जीवनोपयोगी शिक्षाओं और सद्गुणों का संचार करने के लिए कहानी से बढ़कर अधिक उत्तम अन्य कोई माध्यम नहीं है।

इस पुस्तक में हमने उपर्युक्त दृष्टिकोण से कुछ कहानियाँ दी हैं। कहानियाँ जहाँ कथा-वस्तु की दृष्टि से रोचक हैं, वहाँ इनकी भाषा भी अत्यन्त सरल और सरस है। आशा है ये कहानियाँ बच्चों को ज्ञान और शिक्षा देने के साथ-साथ मनोरंजन भी प्रदान करेंगी।

—लेखक

सूची

१. लाखों में एक	...	५
२. ईमानदार लड़का	...	११
३. सचाई का फल	...	१८
४. जैसे को तैसा	...	२४
५. विद्या से बुद्धि बड़ी	..	२९
६. जिसका काम उसी को साजे	...	३२
७. चतुर चौधरी	...	३५
८. गपोड़शंख	...	४०

लाखों में एक

उसकी कबर पर ये शब्द लिखे हुए हैं :—

'कार्ल स्प्रिंगेल
अवस्था चौदह वर्ष ।
बहादुरी के साथ दूसरों की भलाई करता हुआ मरा ।
उसने दो सौ आदमियों की जान बचाई ।'

जो भी उस कबर पर लिखे इन शब्दों को

पढ़ता है, उसका सिर अनजाने ही कबर में सो रहे उस चौदह वर्ष के बालक के सम्मान में झुक जाता है। और इन शब्दों को पढ़ते ही, एक के बाद एक कितने ही प्रश्न उसके मन में उठने लगते हैं। क्या बहादुरी की होगी उसने ? क्या भलाई की होगी उसने ? कैसे उसने दो सौ आदमियों की जानें बचाई होंगी ? और मैं समझता हूँ, ऊपर के उन शब्दों को कबर पर ही नहीं, पुस्तक के पृष्ठ पर भी पढ़ने पर ये प्रश्न पढ़ने वाले के मन में उठेंगे। तो आप चाह रहे हो कि मैं जल्दी उसकी कहानी सुनाऊँ। हाँ, जल्दी ही लो।

नदी पर रेल का पुल था। इस पुल की देख-भाल करने वाला एक चौकीदार था। नदी के इस ओर, पुल के एक छोर पर उसकी झोपड़ी थी। वह अपने बाल-बच्चों समेत वहीं रहता था। उसका काम था—रेल के पुल से होकर नदी पार करते लोगों को रोकना। पास ही, गाँव था गाँव के ढोर-डंगर पुल के पास चरा करते। कभी कोई ढोर—किसी की गाय-भैंस पुल पर न आ जाए, यह भी वह देखता रहता था। भेड़-बकरियों के मारे तो उसकी नाक में दम था।

बरसात के दिन थे। नदी में ज़ोर की बाढ़ आई हुई थी। पानी बढ़ता ही जाता था। अब तो पुल के बह जाने का भी खतरा था। उधर नदी के दूसरे किनारे को पानी काट रहा था। पुल के लिए खतरा पैदा हो गया था। चौकीदार ने अपने चौदह वर्ष के बेटे को इस ओर देखभाल करने को कहा और स्वयं नदी के दूसरे किनारे को देखने गया। वह अभी पुल पार कर दूसरी ओर पहुँचा ही था कि बड़े ज़ोर की अर-र की आवाज़ हुई। पुल बीच से टूट कर बह गया। चौकीदार बेचारा इस ओर रुक गया।

उधर शाम होने लगी शाम को एक गाड़ी आने वाली थी। पर उसे कौन रोके और कैसे रोके? वह अपने आप उस ओर होता तो रोकने की कुछ कोशिश भी करता। उसने दूसरी ओर खड़े लड़के को आवाज़ देकर कुछ कहना चाहा पर एक तो नदी का पाट बहुत चौड़ा था, दूसरे बरसात और बाढ़ के शोर के कारण कुछ सुनाई भी नहीं देता था।

लड़का उधर अलग घबरा रहा था। वह जानता था, गाड़ी आने वाली है। और अगर उसे पीछे ही रोका न गया तो गज़ब हो जाएगा।

सैकड़ों की जानें जाएँगी और लाखों का नुकसान होगा।

लड़के को एक तरकीब सूझी। कभी रात को स्टेशन पर गए हो, तो तुमने देखा होगा, गार्ड के पास लाल और हरे शीशे वाली एक लालटेन होती है। दिन को लाल झंडी और हरी झंडी से जो काम लिया जाता है, बस, वही काम रात को इस लालटेन से लेते हैं।

तो उस पुल पर भी इंजन-ड्राइवर को रात के समय इशारा करने के लिये एक ऐसी लालटेन थी ही। लड़के के वह जलाई और लाल शीशा सामने की ओर करके, जिस ओर से रेल आने वाली थी, उस ओर भागने लगा।

रात हो गई थी। चारों ओर अंधेरा छा गया था। लड़का लालटेन हाथ में लिए भागा जा रहा था। रेल आने ही वाली थी। दूर बजती उसकी सीटी सुनाई दे रही थी।

गार्ड ने देखा—लाल बत्ती लिए कोई पटरी पर खड़ा है। सोचने लगा, यह क्या बात है, यह लाल बत्ती लिए कोई पटरी के बीच क्यों खड़ा है? हो सकता है, कोई खतरा हो। क्यों न गाड़ी को रोक

लूँ। पर गाड़ी तो बहुत तेज थी। इतनी जल्दी कैसे रुक सकती थी! उसने जोर की सीटी बजाई। इसका मतलब साफ था—आगे से हट जाओ। पर लड़का अपनी जगह से हटा तक नहीं। वह जानता था कि आध मिनट बाद क्या होने वाला है, पर क्या हुआ अगर अकेले अपनी जान देकर सैकड़ों जानें बचाई जा सकें तो बुराई क्या है? बल्कि यह तो बहुत ही अच्छा होगा। वह चिल्लाता जाता था—गाड़ी रोको, पुल टूट गया है·····पर रेल के पहियों की गड़गड़ाहट में किसी को कुछ सुनाई नहीं दिया।

इतने में—

रेल आई और लड़का कट गया। इंजन-ड्राइवर पहले से ही रेलगाड़ी को रोकने वाला था। कुछ आगे निकलकर रेलगाड़ी खड़ी हो गई। लोग नीचे उतर पड़े। देखा, लड़का मरा पड़ा था। सामने ही इंजन की तेज रोशनी में दूर टूटा हुआ पुल भी दिखाई पड़ गया।

इस बच्चे के बलिदान की कहानी बिना कहे ही सब समझ गए। दूसरे दिन बड़े सम्मान के साथ

उसे कबर में दफना दिया गया और ऊपर लिखा गया—

कार्ल-स्प्रिंगेल

अवस्था चौदह वर्ष

बहादुरी के साथ दूसरों की भलाई करता हुआ मरा।
इसने दो सौ आदमियों की जानें बचाईं।

ईमानदार बालक

फटे मैले-से कपड़े पहने दस-बारह साल का एक लड़का घूम रहा था। न उसके सिर पर टोपी थी और न पैरों में जूते। हाथ में एक गन्दा-सा थैला लिए वह घूम-फिरकर दियासलाई की डिब्बियाँ बेचता। जो कोई सामने आता, उसी से दियासलाई खरीदने को कहता। इसी तरह वह शाम तक चार-छः आने कमा लेता था। पर चार-छः आनों से बनता ही क्या! वे दो खाने वाले थे, एक वह और

दूसरा उसका छोटा भाई। उनके माता-पिता मर चुके थे। अब उनकी देख-भाल करने वाला कोई न था।

आज वह प्रातः से घूम रहा था, पर अब तक एक भी डिबिया नहीं बिकी थी। बेचारा बहुत उदास था। रोज वह दस-ग्यारह बजे तक कुछ न कुछ बेच ही लेता था।

इतने में एक बाबू जी सामने वाली कोठी से आए। बच्चे ने आगे बढ़ कर कहा—"बाबू जी, दो-चार डिबिया दियासलाई खरीद लीजिए!" और उन बाबू जी के मुँह की ओर देखने लगा।

"नहीं भाई, मुझे दियासलाई की आवश्यकता नहीं है।" बाबू जी ने झट से उत्तर दिया।

एक क्षण पहले दियासलाई बिक जाने की आशा से खिला हुआ बच्चे का चेहरा मुर्झा गया। फिर भी उसने डरते-डरते कहा—"ले लीजिए, तीन ही पैसे तो दाम है। मैंने आज सुबह से एक डिबिया भी नहीं बेची है।" और वह फिर उन बाबू जी की ओर देखने लगा।

"कह जो दिया, मुझे जरूरत नहीं है।" गरज कर बाबू जी ने कहा।

"अच्छा, एक आने में दो डिबिया ले लीजिए !" बच्चा फिर गिड़गिड़ाया।

"अच्छा, यह बताओ कि एक आने में दो डिबिया बेचने पर तुम्हें क्या बचेगा ?"

"मुझे तीन डिबियाँ बिकने पर एक पैसा बचता है, साहब।"

"यह लो एक पैसा।" बाबू जी ने जेब से एक पैसा निकालकर देते हुए कहा।

"नहीं साहब ! मैं मुफ्त का पैसा नहीं लूँगा। आप दियासलाई खरीद लीजिए।" लड़के ने नम्र किन्तु दृढ़ स्वर में कहा।

"अजीब लड़के हो तुम भी ! तीन डिब्बियाँ बिकने पर भी तो तुम्हें एक ही पैसा मिलेगा न, तो मैं तुम्हें वैसे ही एक पैसा दे रहा हूँ। फिर लेते क्यों नहीं हो ?"

"पर यह तो भीख है। मुझे भीख नहीं चाहिए, साहब।"

बच्चे की यह बात सुनकर बाबू जी के मन में उसके लिए मान पैदा हो गया। कहने लगे, "अच्छा, तो फिर तीन डिब्बियाँ दे दो।"

पर जब बाबू जी ने पैसों के लिए जेब में हाथ

डाला तो पता लगा कि टूटे पैसे नहीं हैं। उन्होंने डिब्बियाँ लौटाते हुए कहा—

"मेरे पास इस समय टूटे पैसे नहीं हैं, फिर ले लूंगा।"

"पर लड़के ने कहा, मैं पैसे तुड़ाकर ला दूँगा। आज ही ले लीजिए।"

बाबू जी ने रुपये का नोट जेब में से निकाला और लड़के को थमा दिया।

थोड़ी देर तक खड़े वे उसकी राह देखते रहे पर लड़का न लौटा। सोचा, उसे टूटे पैसे नहीं मिले होंगे, कहीं आगे तुड़ाने चला गया होगा, अभी दो-चार मिनट में आता ही होगा। पर लड़का नहीं लौटा, नहीं लौटा।

उन्होंने सोचा—"अब रुपये से ही हाथ धोने पड़ेंगे। आना होता तो अब तक अवश्य आ जाता। अच्छा, चलो कोई बात नहीं। समझेंगे, एक रुपया देकर यह भी एक पाठ पढ़ा।" वे अपने रास्ते चल दिए।

× × ×

शाम को नौकर ने आकर बताया कि एक नौ-दस बरस का लड़का आप से मिलना चाहता है।

उन्होंने उसे भीतर बुला लिया। उसे देखते ही वे समझ गए कि शायद यह उस लड़के का भाई है। इसके कपड़े उससे भी अधिक फटे हुए और गन्दे थे। कमज़ोर इतना था कि क्या कहना। एक-एक पसली गिनी जा सकती थी। पर चेहरे पर चमक थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह बोला—"क्या आपने मेरे भाई से दियासलाई की तीन डिब्बियाँ खरीदी थीं ?"

"हाँ-हाँ, आज दोपहर को मैंने एक लड़के से तीन डिब्बियां दियासलाई की खरीदी थीं और उसे एक रुपया दिया था। क्या वह तुम्हारा भाई था ?"

"जी हाँ, वह रुपया भुनाने गया था, पर जब भुनाकर आ रहा था तो सड़क पार करते हुए एक मोटर से टकरा गया और जख्मी हो गया। मोटर उसकी टाँगों के ऊपर से निकल गई।"

"क्या ज्यादा चोट आई है ?"

"जी, उसके बचने की कोई आशा नहीं है। उसके पैसे वहीं बिखर गए। सामान का भी कुछ पता नहीं है। यह लीजिए शेष पैसे। वह स्वयं नहीं आ सका। बड़ी कठिनाई से उसे घर पहुँचाया है। वह बेहोश हो गया था। होश आने पर उसने मुझसे

आपके पैसे लौटाने को कहा।"

कहते-कहते बालक का गला रुँध गया। उस भले आदमी का दिल भी पिघल गया। उसने कहा—"चलो, मैं उसे देखूगा।"

आगे-आगे बालक और पीछे-पीछे वे सज्जन उसके घर की ओर चले।

जाकर देखा तो पता लगा कि वह अनाथ बालक एक फूस की झोपड़ी में रहता है। लड़का ज़मीन पर बिछे एक चटाई के टुकड़े पर लेटा हुआ था। उन्हें देखते ही पहचान कर बोला, "मैंने पैसे तो भुना लिए थे, किन्तु लौटकर आ ही रहा था कि मोटर से टकराकर गिर पड़ा और मेरी दोनों टाँगें टूट गईं। आपके पैसे नहीं लौटा सका। आपने मन में पता नहीं क्या सोचा होगा।" इतना कह कर वह दर्द के मारे कराहने लगा।

"उस बात की चिन्ता मत करो बेटा! तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगे। लो, मैं अभी डाक्टर को बुलाता हूँ।"

"नहीं, आप डाक्टर को मत बुलाइए। मुझे अपनी चिन्ता नहीं है।" फिर वह अपने छोटे भाई से बोला, "क्यों भाई, अब तुम्हारा क्या होगा?

अब कौन तुम्हारी देखभाल करेगा ?" यह कहते हुए उसने उसे गले से लगा लिया और दोनों रोने लगे।

इन महाशय ने बालक का हाथ पकड़ कर कहा, "बेटा, तुम इसकी चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे भाई की देखभाल करूँगा।"

बालक को सन्तोष हुआ। उसकी शक्ति समाप्त हो रही थी। फिर भी बची-खुची शक्ति लगा कर उसने उस महाशय की ओर ताका। आँखों से धन्यवाद और कृतज्ञता टपक रही थी। दिल कुछ कहना चाहता था पर ज़बान साथ नहीं दे रही थी। उसी समय उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

सचाई का फल

सत्यभूषण बहुत भला लड़का था। सभी उसे सराहते। उसकी आदतें अच्छी थीं। बड़ों का मान करता, छोटों को प्यार करता। न किसी से लड़ता न झगड़ता। शिक्षक भी उसे सराहते थे। वह पढ़ने-लिखने में बहुत तेज़ तो नहीं था, पर नालायक भी नहीं समझा जाता था। आप कहेंगे कि पढ़ाई में बहुत तेज़ नहीं था तो शिक्षक किस लिए सराहते थे ?

भई, बात यह है कि पढ़ने-लिखने में तेज़ होना ही तो सब कुछ नहीं है न। बस, उसकी सराहना भी कुछ दूसरे गुणों के कारण ही होती थी।

उसका सबसे बड़ा गुण था—सच बोलना। लाभ हो या हानि, कोई प्रशंसा करे या बुराई पर वह सत्य बोलने से कभी नहीं हिचकिचाया।

इस सच बोलने के कारण एक बार तो उसे मार भी खानी पड़ी। बात यह हुई कि उसके ही गाँव का एक लड़का बलराम बड़ा शरारती था। दोनों एक ही पाठशाला में पढ़ते थे। घर से साथ-साथ जाते और लौटते भी एक साथ। शरारती लड़का बलराम प्रतिदिन आते-जाते खेत से गन्ने तोड़ लेता था। वह कहता तो सत्यभूषण से भी कि आओ गन्ने तोड़ें पर सत्यभूषण यह कह कर इन्कार कर देता कि मैं चोरी नहीं करूँगा। बलराम गन्ने तोड़ कर लाता तो सत्यभूषण की ओर भी एकाध बढ़ा देता और चूसने को कहता। पर सत्यभूषण चोरी के माल में हिस्सा बंटाने से साफ इन्कार कर देता।

एक दिन खेत के मालिक ने पाठशाला में जाकर मुख्याध्यापक से शिकायत करते हुए कहा कि आपके छात्र मेरे खेत से प्रतिदिन गन्ने तोड़ते हैं।

बलराम को पता चल गया कि खेत के मालिक ने शिकायत की है। वह दौड़ा-दौड़ा सत्यभूषण के पास गया। कहने लगा—भई, तुम्हारे सिवा किसी को इस बात का पता नहीं है। अगर मुख्याध्यापक तुम से पूछें तो तुम कह देना कि मुझे मालूम नहीं।

सत्यभूषण ने साफ कह दिया कि मैं तो सच्ची बात कहूँगा।

इस पर बलराम बिगड़ बैठा। वह काफी हट्टा-कट्टा था। सत्यभूषण जैसे दो भी आजाएं तो भी अकेला काफी था। मनाने से काम न चला तो उसने धमकी दी—"अगर तुमने मेरा नाम लिया तो सच बोलना ही भुला दूँगा।" पर सच बोलने वाले किसी की धमकियों से कब डरते हैं! सचाई पर चलने का तो अर्थ ही यह है कि चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पर सचाई पर चलने से मुँह न मोड़ा जाए। सत्यभूषण भी नहीं डरा। कहने लगा, "तुम्हारे जी में जो आए सो करना। मैं धमकियों से नहीं डरता।"

अभी ये बातें हो ही रही थीं कि एक लड़के ने आकर कहा कि आप दोनों को मुख्याध्यापक जी बुलाते हैं। दोनों उनके पास पहुँचे। पूछने पर सत्य-

भूषण ने सच-सच कह दिया। इस पर बलराम की खूब पिटाई हुई। झिड़कियाँ सुननी पड़ीं सो अलग।

पर जब शाम को छुट्टी हुई तो रास्ते में बलराम ने अपना गुस्सा सत्यभूषण पर बुरी तरह निकाला। बेचारे को खूब पीटा।

इसके बाद भी तीन-चार घटनाएं ऐसी हुईं कि सत्यभूषण सचाई पर डटा रहा। कष्टों और दुःखों से नहीं घबराया।

दिन बीतते गए। सत्यभूषण बड़ा हुआ। नौकरी करने शहर चला गया। वहाँ खोटी संगत मिल गई। इस संगत का प्रभाव उस पर भी पड़ा। वह एक दिन चोरी करते पकड़ा गया। पुलिस ने उसे हवालात में बन्द कर दिया। मुकदमा चला। साल भर के लिए कैद का दण्ड मिला। देख लिया आपने बुरी संगत का असर? सत्यभूषण कैदखाने में बन्द कर दिया गया।

एक दिन की बात है। जेलों के एक बड़े अधिकारी इस जेल की देखभाल करने आए।

उन्होंने जेल के दारोगा से कहकर सब कैदियों को बुलाया। फिर एक-एक से पूछने लगे—"कहो भाई, तुम यहाँ कैसे आए?"

पहले कैदी ने उत्तर दिया—"जी, मैंने कोई भी अपराध नहीं किया। मेरे शत्रुओं ने मेरे विरुद्ध झूठ-मूठ का मुकद्दमा बना दिया और रुपए-पैसे देकर झूठी गवाही दिलवादी। मुझे सजा हो गई।"

अधिकारी ने कहा—"तो क्या एक भी गवाह सच न बोला?"

"जी नहीं, वे तो घूस खाए हुए थे। झूठ-मूठ मुझ गरीब को कैद करा दिया।"

दूसरे ने कहा—"महाराज, जज ने घूस लेकर मेरे मुकदमे को बिगाड़ दिया। मैं बहुत गरीब हूँ। मैं तो किसी को घूस दे नहीं सकता था। इसीलिए यहाँ आना पड़ा।"

अब तीसरे की बारी थी। उसने कहा—"श्रीमान्, क्या बताऊँ, थानेदार से मेरी अनबन थी। उसने रात को किसीका सामान मेरे अहाते में रखवा दिया और सुबह-सुबह सिपाही लेकर तलाशी लेने आ पहुँचा। मुझ पर उसने चोरी का मुकदमा बना दिया। इसलिए यहाँ आना पड़ा।"

प्रत्येक कैदी ने इसी तरह का कोई न कोई बहाना बनाकर अपनी सफाई दी।

अब केवल एक कैदी बाकी बचा था। अब

उसी की बारी थी। अधिकारी महोदय उसके सामने जा खड़े हुए और पूछने लगे--"क्यों भाई, तुम यहाँ कैसे आए ? क्या तुम भी निर्दोष हो ?"

"जी नहीं। मैं निर्दोष नहीं हूँ। मैंने चोरी की थी और उसी समय पकड़ा गया था, अब यहाँ अपनी करनी का फल पा रहा हूँ। अब तो पछताता हूँ पर अब क्या हो सकता है !" उसने उत्तर दिया।

अधिकारी ने कहा--"तो तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो न ?"

"जी हाँ।" कैदी ने कहा।

"तुम हुए अपराधी और ये सारे भले मानुष। तुम जैसे अपराधी का इन सबके साथ रहना उचित नहीं है। तो मैं आज से तुम्हें इन सबसे अलग रहने की आज्ञा देता हूँ।" और उसी समय दारोगा को कहकर उसकी हथकड़ियाँ खुलवा दीं और छोड़ दिया।

यह कैदी वही सत्यभूषण था, जो सच बोलने के लिए प्रसिद्ध था।

जैसे को तैसा

काशी में एक बड़े विद्वान् राजा राज्य करते थे। उनकी राज-सभा विद्वानों से भरी रहती थी। वे विद्वानों का बड़ा मान करते। उन्हें कविता सुनने का बड़ा चाव था। अच्छी कविता बनाने वाले को इनाम भी देते थे।

जब कवि लोगों को उनके कविता-प्रेम का पता लगा तो इनाम पाने की इच्छा से बढ़िया-बढ़िया

कविता बनाकर लाने लगे। जिस कवि की कविता अच्छी होती, उसे खूब इनाम मिलता।

गुजरात में एक कवि था। बड़ा ही निर्धन। परन्तु उसकी कविता बड़ी सरस और ऊँची होती। उसके मित्रों ने उसे कविता बनाकर काशीराज के पास जाने को कहा।

उसने एक बहुत बढ़िया कविता काशीराज को सुनाने के लिए बनाई और काशी जा पहुँचा।

अब उसे राजा के पास जाना था। वह राजमहल के मुख्य द्वार पर जा पहुँचा।

द्वार पर नंगी तलवार लिए द्वारपाल खड़ा था। उसने कविराज को भीतर नहीं जाने दिया।

कवि ने एक उपाय सोचा। उसने द्वारपाल से दो-चार मीठी-मीठी बातें कीं। किन्तु द्वारपाल कब मानने वाला था।

उसने कहा—"कविराज, यहाँ बातों से कोई बात नहीं बनेगी। कुछ जेब में हो तो निकालो। कुछ दिए बिना तुम भीतर नहीं जा सकोगे।"

"भाई! इस समय तो मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। परन्तु राजा से जो पुरस्कार मिलेगा, उस

में से आधा तुम्हें दूँगा।" कवि ने कहा।

यह सुनकर द्वारपाल बहुत प्रसन्न हुआ और कविराज को भीतर जाने दिया।

थोड़ी दूर भीतर जाने पर कविराज को एक और द्वारपाल ने रोक लिया।

कवि ने उसे भी पुरस्कार से आधा देने की प्रतिज्ञा की, और वह जैसे-तैसे राजा के पास पहुँचा।

राजा ने कविता सुनी तो उस पर मुग्ध हो गया। सारी सभा भी वाह वाह कहने लगी।

काशीराज ने उसे पुरस्कार में एक हाथी दिया।

कवि ने कहा--"राजन्! मुझे हाथी नहीं चाहिए। मैं तो कुछ और ही चाहता हूँ। मेरी मन-चाही वस्तु देकर मेरी इच्छा पूरी कीजिये।"

राजा ने कहा--"कविराज, आप क्या चाहते हैं, कहिए?"

कवि--"महाराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे सौ डण्डे मारे जाएँ।"

राजा ने कहा--"कविराज! यह क्या कह रहे हो! सोना माँगो, हीरे-मोती मांगो। जितने मांगो उतने दूँगा।"

कवि ने फिर कहा—"राजन्! तुम कवियों को मनचाही वस्तु देते हो तो मुझे सौ डण्डे ही चाहिए। यदि तुम नहीं दे सकते तो मैं जाता हूँ।"

जब राजा ने देखा कि डण्डों के अतिरिक्त कवि को प्रसन्न करने का और कोई उपाय नहीं है तो एक नौकर को सौ डण्डे मारने की आज्ञा दी।

जब नौकर डंडा उठाकर मारने को तैयार हुआ तो कवि ने उसे रोकते हुए कहा—"भैया, ज़रा ठहरो, मेरे इनाम के दो और भागीदार हैं।"

राजा ने कहा—"क्या यह कविता तीन आदमियों ने मिलकर बनाई है?"

"नहीं महाराज! इसके भागीदार कोई दो कवि नहीं किन्तु आपके दोनों द्वारपाल हैं। मैंने उनसे प्रतिज्ञा की है कि जो भी इनाम मुझे मिलेगा, उसका आधा-आधा तुम्हें दूँगा। यदि ऐसा न करता तो मेरा भीतर आ सकना असम्भव था।"

"इसलिए वह सौ डण्डे उन दोनों द्वारपालों को आधे-आधे लगा दिए जाएँ, जिससे मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाए।"

कविराज के कहने से उन दोनों द्वारपालों को

बुलाकर, प्रत्येक की पीठ पर पचास-पचास डण्डे लगाए गए। और उन्हें नौकरी से भी हटा दिया गया।

कवि की यह चतुराई देखकर राजा और मंत्री सभी बहुत प्रसन्न हुए। कविराज को बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण तथा सौ सोने की मोहरें इनाम दी गईं।

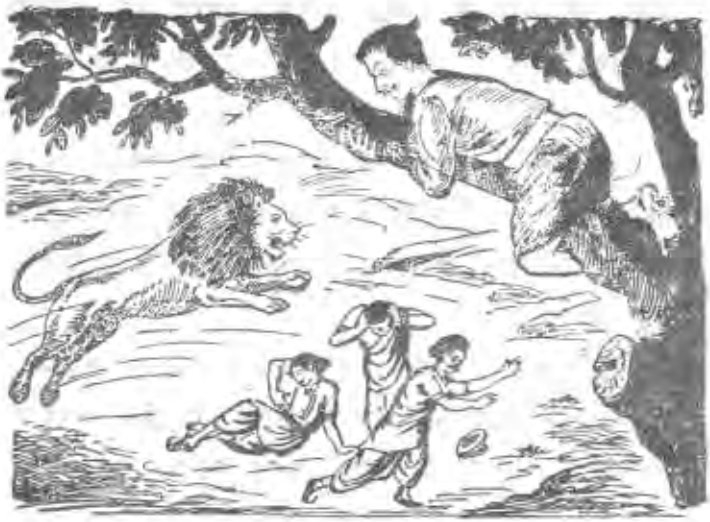

विद्या से बुद्धि बड़ी

बंगाल में देवपुर एक गाँव था। उस गाँव में बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वैसे तो गाँव के सारे बालक साथ खेलते थे किन्तु अश्विनीकुमार, विद्याधर, प्राणनाथ और बुद्धिप्रकाश की आपस में बड़ी मित्रता थी। इकट्ठे पढ़ते और इकट्ठे खेलते। इनमें बुद्धिप्रकाश खेलने में सबसे आगे और पढ़ने में सब से पीछे था। पढ़ने में उसका मन नहीं लगता।

जब सब पढ़-लिखकर विद्वान् हुए तो सोचा कि कहीं दूर देश में जाकर अपनी विद्या का प्रभाव दिखाया जाए। इससे धन और यश दोनों मिलेंगे। चारों चलने को तैयार हुए।

अश्विनी कुमार ने कहा—"बुद्धिप्रकाश कोई पढ़ा-लिखा तो है नहीं। उसे साथ ले जाना ठीक नहीं। हम तीनों कमाएंगे और वह मुफ्त में हिस्सेदार बन जाएगा।"

विद्याधर ने अश्विनी कुमार को टोक कर कहा—"ऐसी छोटी बात नहीं करनी चाहिए। हम चारों में मित्रता है। इकट्ठे पढ़े और इकट्ठे खेले। क्या हुआ यदि वह हमारे जैसा विद्वान् नहीं है···"

चलते-चलते मार्ग में एक घना जंगल आया। उसमें उन्हें बहुत पहले मरे हुए शेर की हड्डियाँ दिखाई दीं।

विद्याधर कहने लगा—"हम सब को अपनी विद्या के बल से इस शेर को जीवित करना चाहिए।"

बुद्धिप्रकाश को छोड़ बाकी दोनों ने हाँ में हाँ मिलाई। एक ने उसकी हड्डियों को जोड़कर ढांचा-बना दिया।

दूसरे ने अपनी विद्या के बल से उसमें मांस

और चमड़ी पैदा कर दी।

तीसरे ने कहा—"लो, अब मैं इसमें जान डालता हूँ।"

बुद्धिप्रकाश ने कहा—"भैया, ऐसा मत करो। यदि यह जी उठा तो हम सबको फाड़ खाएगा।"

अविश्नी कुमार ने उसे धिक्कारते हुए कहा—"तुम्हें स्वयं तो कुछ आता-जाता नहीं, इसी से मना करते हो।"

"अच्छा, यदि तुम मेरी बात नहीं मानते तो भी दो क्षण ठहरो, मुझे पहले इस वृक्ष पर चढ़ने दो पीछे जो चाहो सो करना।" बुद्धिप्रकाश यह कहकर वृक्ष पर चढ़ गया।

सिंह में प्राण डालते ही वह उठ खड़ा हुआ और उन तीनों को फाड़ खाया।

जिसका काम उसी को साजे

गधा जाग रहा था। कुत्ता भी जाग रहा था। दोनों को कुछ आहट सुनाई दी। कुत्ते ने सुना अनसुना कर दिया। पर गधे से नहीं रहा गया। कहने लगा—"कालू, ओ कालू, सुनता है? मालूम होता है घर में चोर घुस आया है।"

कालू बोला—"चुप भी रह! तुझे क्या पड़ी है।

पहरेदार मैं हूँ कि तू। मैं जानूँ मेरा काम।"

गधे ने फिर कहा—"कालू, तू भी अजीब कुत्ता है। जरा भौंककर मालिक को जगा दे। मालिक का नुकसान होगा। तुझे क्या मिलेगा ? तेरी बेकदरी होगी। कोई बात भी नहीं पूछेगा।"

"आगे ही कौन-सी कदर हो रही है। पेट भरकर खाना तो मिलता नहीं। भूखे पेट रखवाली कैसी! भीतर अनाज की बोरियाँ भरी पड़ी हैं। पर मेरे लिए सूखा टुकड़ा भी नहीं। घर में गाय है, भैंस है पर दूध की तो बात छोड़ो कभी छाछ का घूँट भी नहीं मिलता। हमारी परवाह किसे है ?" कालू बोला।

पर गधा पूरा स्वामि-भक्त था। उसका दिल न माना। बोला—"कालू, मालिक फिर भी मालिक है। हमारी थोड़ी-सी सहायता से चोर पकड़ा जाएगा। मालिक की हानि नहीं होगी। तुम नहीं जगाते तो फिर मैं ही जगाता हूँ। वैसे काम तो तुम्हारा है, पर खैर।"

कालू ने गधे को डाँट दिया—"खबरदार! अगर तूने मालिक को जगाया। लोभी और कंजूस का धन लुटना ही चाहिए।" पर गधे ने कुत्ते की बात

नहीं मानी। वह किसान की चारपाई के पास जाकर रेंकने लगा।

किसान की आँख खुल गई। उसे गधे पर गुस्सा आया। गधे की यह मजाल कि भीतर घुस आए। नींद खराब कर दी। किसान सिरहाने डण्डा रखकर सोता था। उसने डण्डा उठाया और तड़ातड़ गधे को पीटना शुरू कर दिया।

गधा बेचारा अपना-सा मुँह लेकर ढेंचू-ढेंचू करता वापस लौट आया।

कुत्ते ने कहा—"देख लिया! मैंने मना किया था। पर तू तो गधा ठहरा। मैं कहता हूँ मेरी बात छोड़ो, तुम्हारे ही साथ कब अच्छा सलूक होता है। तुझ पर गोबर लादते हैं। मिट्टी और रेत के बोरे लादते हैं। दिन भर काम लेते हैं। पर कभी सेर भूसा तो आगे डालते नहीं। चरने छोड़ देते हैं।"

अब गधे को अपनी गलती समझ में आई। पर अब पछताने से क्या हो सकता था। उसको पसलियाँ दुख रही थीं। वह रो रहा था, रेंक रहा था। सोच रहा था, "अब क्या करूँ। भला करते बुरा हुआ। पर जो कुछ हुआ ठीक ही हुआ। भूल मेरी ही है। न दूसरे के काम में हाथ डालता न मार खाता।"

चतुर चौधरी

अनाज खलिहानों में पड़ा हुआ था। घर के सब लोग वहाँ काम कर रहे थे। फसल गाही जा रही थी। काम का ज़ोर था। फसल कट चुकी थी। इसलिए गाय-भैंस, भेड़-बकरियाँ मन-मरजी से चर-चुग रही थीं। कोई देखने-भालने वाला नहीं था।

रामू के लड़के दीना ने भी अपने ढोर-डंगर

खोले और खेतों की ओर हाँक दिए। इनमें एक भेड़ भी थी। इस भेड़ के मन में पता नहीं क्या आया कि वह थोड़ी ही देर बाद घर लौट आई।

आँगन के कोने में एक ओर मिट्टी का एक मटका पड़ा था। छंटाई-सफाई से बचा कुछ अनाज इसमें डाल रखा था।

भेड़ घूमती-फिरती मटके के पास पहुँची। भीतर के अनाज पर जो उसकी नज़र पड़ी तो मुँह में पानी भर आया।

आज कई दिनों के बाद उसे अनाज खाने को मिला था। बस, उसने अपना सिर मटके में डाला और कुर-मुर करती हुई मजे से खाने लगी।

रोज जब वह अपनी साथिन भेड़ों के साथ चरती तो उसके पल्ले कुछ न पड़ता। अगर कोई हरी झाड़ी दिखाई देती तो सारी भेड़ें एक साथ उस पर टूट पड़तीं और चार-छः पत्ते ही एक-एक के हिस्से आते।

आज वह बात नहीं थी, वह अकेली थी, कोई दूसरी हिस्सा बँटाने वाली नहीं थी। यही कारण था कि आज वह धीरे-धीरे खा रही थी।

खाते-खाते उसे प्यास लगी। सोचा--थोड़ा पानी पी लूँ। बाकी अनाज पानी पीकर खाऊँगी। किसी का खटका तो है ही नहीं। पर यह क्या ? जब उसने अपना सिर बाहर निकालना चाहा, तो नहीं निकला, मटके में ही फंस गया।

वह फिर चुप-चाप अनाज खाने लगी। इसी तरह दोपहर हो गई।

रामू खेत से घर लौटा। आँगन में पहुँचा तो देखता क्या है कि भेड़ मटके में से अनाज खा रही है। पर किसी को कहता क्या ? भेड़ तो अपनी ही थी।

वह उसे हटाने दौड़ा। तब पता लगा कि भेड़ का सिर मटके में फँस गया है।

रामू सोचने लगा--अब क्या किया जाए ? उसे याद आया, अभी चौधरी जी को बुलाता हूँ। वे तो देखते ही कोई न कोई उपाय ढूंढ़ निकालेंगे। और रामू भागा-भागा चौधरी जी के पास पहुँचा।

उसने चौधरी जी को सारी बात कह सुनाई।

चौधरी ने कहा--"तुम चलो ! मैं अभी आता हूँ।"

रामू ने कहा—"चौधरी जी, साथ ही चलते हैं।"

पर चौधरी जी कहने लगे—"भई, मेरा-तुम्हारा क्या साथ ? तुम पैदल जाओगे और मैं ऊँट पर सवार होकर जाऊँगा। तुम तो जानते ही हो कि मुझे पैदल चलने की आदत नहीं है।"

रामू लौट आया और चौधरी के आने की राह देखने लगा। इतने में चौधरी जी भी ऊँट पर सवार होकर आ गए। आंगन के दरवाजे पर ऊँट रुका। रामू आगे बढ़ा कि चौधरी जी को आदर के साथ भीतर ले आए पर चौधरी जी ऊँट से उतरे नहीं।

उन्होंने रामू से कहा कि इस चौखट को उखाड़ डालो, नहीं तो हमारा ऊँट भीतर कैसे जाएगा।

रामू ने झट चौखट उखाड़ दी और चौधरी जी ऊँट समेत आँगन में घुसे।

देखकर कहने लगे—"बस, इतनी-सी बात के लिए घबरा रहे थे ? लो, अभी सब ठीक किए देता हूँ।"

यह कहकर म्यान से अपनी तलवार निकाली और भेड़ की गर्दन पर दे मारी। खून का फव्वारा

छूट पड़ा और भेड़ का धड़ एक ओर गिर पड़ा।

रामू ने कहा--"चौधरी जी, भेड़ का सिर तो अब भी मटके में ही है।

चौधरी जी ने कहा--"तुम चुपचाप देखते जाओ, अभी तुम्हारे सामने सब कुछ ठीक किये देता हूँ।" यह कहकर पास ही पडा हुआ ईंट का टुकड़ा उठाया और मटके पर दे मारा। मटके के ठीकरे-ठीकरे हो गए। अब भेड़ का सिर भी बाहर निकल आया।

चौधरी जी कहने लगे—"लो, सब ठीक हो गया न। इतनी-सी बात पर घबरा रहे थे।"

रामू ने चौधरी का बहुत-बहुत धन्यवाद किया। कहने लगा--"चौधरी साहब, आपकी उमर लम्बी हो! जब तक आप हैं, हमें किसी बात की चिन्ता नहीं है। यह आप ही की समझ है कि चाहे दरवाजा उखाड़ना पड़ा, भेड़ भी काट डाली, मटका भी फोड़ डाला किन्तु भेड़ का सिर तो निकाल ही दिया।"

पास-पड़ोस के लोग भी आकर कहने लगे—"हमारे चौधरी जी कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं हैं। वे भली प्रकार जानते हैं कि किस काम को कैसे करना चाहिए।"

गपोड़शंख

कुछ लड़के समुद्र के किनारे खेल रहे थे। खेलते-खेलते उन्हें एक शरारत सूझी। पास ही एक कछुआ बैठा धूप सेक रहा था। लड़कों ने उसे जा घेरा। कछुए की बात तो तुम जानते ही हो। जब उसे डर मालूम होता है तो वह अपनी गरदन और टाँगें समेट कर भीतर कर लेता है। फिर उसका कोई

कुछ नहीं बिगाड़ सकता। पीठ उसकी इतनी सख्त होती है कि कुछ न पूछो। उसकी पीठ पर चाहे तुम पत्थर-कंकर मारते रहो, इसका कुछ नहीं बिगड़ेगा।

उस कछुए ने भी अपने अंग समेट लिए। अब ये लड़के उसे गेंद की तरह ठोकरें मारने लगे, इधर-उधर उछालने लगे।

इतने में वहाँ एक किसान आ निकला। उसने लड़कों को समझाया—"क्यों बेचारे को तंग करते हो। जैसी जान तुम में, वैसी इस में। किसी जीव को सताना नहीं चाहिए। छोड़ दो बेचारे को।"

लड़कों ने उस आदमी की बात मान ली। कछुए को छोड़ दिया। पर कछुए के मन से डर न गया, वह उसी तरह सिमटा पड़ा रहा।

किसान ने कछुए के मन की बात समझ ली। उसने उसे उठाया और पानी में छोड़ दिया।

पानी तो कछुए का घर ठहरा। वहाँ डर किस का! पानी में गिरते ही उसकी जान में जान आई। किसान चलने लगा तो कछुए ने कहा—"किसान भाई, जरा दो मिनट रुको। तुमने मेरी जान बचाई है। उसके बदले में मैं भी तुम्हारी कुछ सेवा करना चाहता हूँ।"

किसान खड़ा हो गया।

कछुए ने एक गहरी डुबकी लगाई और कोई दो मिनट बाद मुँह में एक शंख लिए निकल आया।

शंख उसने किनारे पर रख दिया। किसान से कहा—"किसान भाई, तुम इसे उठा लो। इसे खूब संभाल कर रखना। यह कोई ऐसा-वैसा शंख नहीं है। यह सच्चा शंख है। इससे जो कुछ मांगोगे, वह तुम्हें मिल जाएगा।"

किसान ने शंख उठा लिया। मुँह माँगी चीज़ देने वाले उस शंख को लेकर वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह खुशी-खुशी अपने घर की ओर चला। उसका घर वहाँ से काफ़ी दूर था। रास्ते में उसे एक पुराना मित्र मिला। किसान ने इस शंख की बात अपने मित्र को बताई।

मुँह माँगी चीज़ देने वाले शंख की बात सुनकर उस मित्र के मन में पाप समा गया।

वह बोला—"अरे भाई, आज इतने दिनों बाद मिले हो। क्या घर नहीं चलोगे? दो घड़ी आराम कर लो। दिन ढले चले जाना।"

किसान उसके घर गया। दोपहर का समय

था। रास्ते की थकान के कारण किसान को लेटते ही नींद आ गई।

उसका मित्र तो यह चाहता ही था कि उसे नींद आए तो मैं सच्चे शंख को निकाल कर उसके बदले सादा शंख रख दूँ। और उसने वैसा ही किया।

थोड़ी देर बाद किसान उठा और कह-सुन कर अपने घर को चल पड़ा। दिन डूबने के समय वह घर पहुँचा। पहुँचते ही उसने अपनी पत्नी को शंख के मिलने की बात बताई। उसकी पत्नी भी बहुत प्रसन्न हुई। दोनों ने हाथ-पैर धोए। धूप-दीप जला-कर शंख की पूजा की। और फिर हाथ जोड़ कहने लगे—"शंख देव, घर में खाने-पीने को नहीं है। कपड़े-लत्ते भी नहीं हैं। बीस रुपये दे दीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी।"

पर बीस रुपयों की तो बात छोड़ो, शंख ने फूटी कौड़ी भी नहीं दी। किसान की झूठी बात पर उस की पत्नी को गुस्सा आ गया। उसने अपने पति को खूब जली-कटी बातें सुनाईं। किसान बेचारा चुप रहा। कहता भी क्या! दूसरे दिन मुँह अन्धेरे वह घर से चल दिया और सीधा कछुए के पास पहुँचा। किसान ने अपना सारा गुस्सा कछुए पर निकाला।

कहने लगा—"झूठा कहीं का, खामखाह मुझे भी घरवाली के सामने झूठा बनाया। चले थे उपकार का बदला देने। तुम्हारे उस सच्चे शंख ने एक कौड़ी भी नहीं दी।"

कछुए ने किसान से पूरी बात सुनी। वह समझ गया कि क्या बात है।

कहने लगा—"घबराओ मत! यहाँ शंखों की कमी नहीं है। एक से एक बढ़िया शंख यहाँ भरे पड़े हैं। तुम एक मिनट रुको। मैं तुम्हें कल से भी बढ़िया शंख लाकर दूँगा।"

यह कहकर कछुए ने डुबकी लगाई और शंख निकाल लाया।

शंख किसान को देते हुए कछुए ने कहा—"यह बहुत बढ़िया शंख है। कल वाले से भी बढ़िया। इसका इनाम है गपोड़शंख। इससे जितनी चीज मांगोगे उससे दुगुनी देगा।"

किसान फिर खुशी-खुशी घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में फिर कल वाला मित्र मिला। उसने किसान से गपोड़शंख की बात सुनी तो उसके मन में लालच समा गया।

उसने सोचा—"सच्चा शंख जितना माँगो,

उतना देता है। गपोड़शंख जितना माँगो, उससे दुगना देता है।

वह किसान को फिर घर ले गया। खूब आदर-सत्कार किया। किसान सो गया तो चुपके से गपोड़-शंख निकाल लिया और उसकी जगह सच्चा शंख रख दिया।

किसान घर पहुँचा। सारी बात अपनी पत्नी को कह सुनाई। पर उसकी पत्नी को विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा—क्या मालूम, यह भी कल वाले जैसा ही निकले।

फिर भी वे दोनों उसकी पूजा करने लगे। पूजा कर चुके तो प्रार्थना करने लगे—"शंखदेव, हम बहुत गरीब हैं। घर में अनाज नहीं है। बीस रुपए दीजिए, बड़ी कृपा होगी।"

शंख ने बीस रुपए दे दिए।

आइए, अब ज़रा किसान के मित्र के घर चलें। देखें, उस बेईमान और लालची का क्या हाल है।

वह भी गपोड़शंख से प्रार्थना कर रहा है—"गपोड़शंख महाराज! हमें दस रुपये दीजिए। आपकी बड़ी कृपा होगी।"

गपोड़शंख जी बोले—"अरे, सिर्फ दस रुपए! दस

रुपयों से क्या बनेगा ? मैं तुम्हें दस नहीं बीस रुपए दूँगा।"

किसान का मित्र प्रसन्न होकर बोला—"शंख-देव ! आप बड़े दयावान् हैं। आपकी इच्छा है तो बीस दे दीजिए।"

गपोड़शंख फिर बोले—"अरे, बीस ही क्यों माँगते हो, चालीस क्यों नहीं माँग लेते ?"

मित्र ने कहा—"अच्छी बात है। चालीस दीजिए।"

शंख ने उत्तर दिया—"बस, चालीस, सिर्फ चालीस रुपए ? चालीस रुपयों से तो चार दिन भी नहीं कटेंगे। अस्सी क्यों नहीं माँग लेते ?"

अब मित्र मन ही मन खीझ उठा। गुस्से को दबाकर बोला—"अच्छा बाबा, अस्सी रुपए दे दो। कुछ दो तो सही।"

गपोड़शंख ने कहा—"नहीं नहीं, अस्सी नहीं, मैं तुम्हें अस्सी के दुगुने, एक सौ साठ दूँगा। पूरे एक सौ साठ। नगद एक सौ साठ।"

अब तो मित्र का रहा-सहा धीरज भी टूट गया। वह झुँझलाकर बोला—"कुछ दोगे भी या बातें ही बनाओगे ?"

इस बार गपोड़शंख खिल-खिलाकर हँस पड़ा। हँसते-हँसते कहने लगा—"अरे, तुम भी निरे बुद्धू हो। जानते नहीं मेरा नाम क्या है? गपोड़शंख! मैं गप्पी हूँ, गप्पी! एक नम्बर का गप्पी! दिन भर गप्पें मारना मेरा काम है। देने-दिलाने का कोई काम नहीं।"

"देने-लेने के सिर खाक।"

★